तुम्हारे लिए
गोपीकृष्ण गोपेश
साहित्य भवन प्रा० लि०

नाम पुस्तक :- तुम्हारे लिए

प्रकाशन काल:- १९६३ ई०

प्रवि. पुरस्कार हेतु:- बालकृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार

नाम लेखक:- श्री गोपीकृष्ण गोपेश

लेखक का पता:- [illegible] राजौरी नगर नयी दिल्ली

• • • तुम्हारे लिए

तुम्हारे लिए

गोपीकृष्ण गोपेश

साहित्य भवन (प्राइवेट) लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९६३ ईसवी

चार रुपया मात्र

मुद्रक—यू० पी० प्रिन्टिंग प्रेस, ४२ एडमान्स्टन रोड

आकाशवाणी,
नई-दिल्ली
२२ दिसम्बर, '६२

दोस्तो—जाने-अनजाने,

क्रम की बात करूं तो इस संग्रह की गिनती तीसरी होगी, यानी यह कि कोई २०-२२ वर्षों से कवितायें भी गढ़ता-लिखता, छपाता-सुनाता और गुनगुनाता-गाता रहा हूँ। पर, अकसर ही यह तार टूटा है—

कभी 'मॉडर्न' बनने की चेष्टा की और प्रवाह की नई-से-नई लहर के साथ बहने की बात सोची तो बहुत बार बात नहीं बनी; और, नहीं बनी तो शब्दों में नहीं बंधी—

कभी उम्र में थोड़े छोटे-बड़े यानी समवयस्कों-से अपने साहित्यिक-मित्रों और साथियों की गुटबंदियों का शिकार हुआ तो अपने पर से विश्वास उठ गया; और, जब विश्वास ही उठ गया तो शब्दों में प्राण नही बैठे—

फिर, भारत-सरकार की कृपा से रूस जाने का अवसर मिला तो सोवियत-संघ के कितने ही इलाक़ों के साथ-साथ दुनिया के कितने ही देश देखे—एक से अधिक बार। एक नई और बहुत बड़ी दुनिया आँखों के सामने आई—अनगिनत पहेलियों और गुत्थियों से बंधी-लिपटी—अकसर ही नये साँचे में ढलती। ऐसे में 'सबजेक्टिव-ऑबजेक्टिव' के बीच ऐसा उलझा कि क़लम हुई तो बात नहीं सिमटी, और, बहुत मान-मनौनों के बाद, वे घर आने को हुए भी तो बोरिया न हुआ—

स्वदेश लौटा, लगभग छः वर्ष बाद, तो लगा कि अब, बस चले अपना, तो किसी को इतने समय तक बाहर न रहने दूँ। इतने दिनों

बाहर रहने पर होता क्या है कि कुछ काँटे झड़ जाते हैं तो कुछ मानो में 'सेंसिटिवनेस' जाने कितनी बढ़ जाती है। ग़रज़ यह कि खौफ से ही जलता-कुढ़ता रहा.........मन का जितना कुछ व्यक्त हुआ, उससे कहीं अधिक अनकहा रह गया—

जैसे-तैसे ज़रा सांस सधी तो कला की बारीकियों में रेंगने वाला 'ड्रैगन' आस्तीन का सांप बन गया, और रचना के हर तंतु पर अपनी सांस का ज़हर उगलने लगा। यानी, यह कि इस समय मैं स्तम्भित कुछ अधिक हूँ और कहना मुश्किल है कि कितनी दुश्वारियों से गुज़रना होगा कुछ लिखने-सा लिख पाने के लिये।

ख़ैर इससे कुछ नहीं.........अगर अब तक बेनामोनिशाँ नहीं हुआ, और बीच-बीच में उभर कर हवा में सांस लेता रहा, तो अब साथ ले जाऊँगा। एक 'परिमैलियन'-साथी के शब्दों में अभी मेरा सोता सूखा नहीं है। आप भविष्य में निश्चय ही मुझसे कुछ अधिक की आशा कर सकते हैं—कुछ ज्यादा निथरा हुआ, कुछ अधिक प्राणमय, कुछ अधिक जीवनमय..........

फ़िलहाल, इन रचनाओं के साथ इतना विश्वास भी सहेजिये कि अब धार मुझे नहीं काटेगी, मैं धार काटूँगा।

स्नेहसहित,

आपका,

गोपीकृष्ण गोपेश

उसे—

जिसके

सधे हुए स्वर

बेसुरे हो गये—

मेरे कारण.....

'कोकिल के स्वर वनकर जैसे
आई याद किसी की',
और अन्य गीत—

रे लिए

कोकिल के स्वर बनकर
जैसे
आई याद किसी की !

माना, सो न सका, भारी है आसमान की पलकें,
पर, उदास हैं, सरल-कल्पना की ज्यों बिखरी-अलकें;
तारा टूटा याकि हृदय ने
तोड़ दिया दम अपना,
फिर भी, नभ-गंगा की छवि सी छाई याद किसी की !
कोकिल के स्वर बनकर
जैसे
आई याद किसी की !!

तारों के पीले चेहरों को भी बादल ने घेरा,
फूली एक कली उपवन में, डूब गया दिल मेरा—
और, सुबह के पांच बजे की
भरी-भरी-सी आंखें,
कौन बताये ओस कहाँ से लाई याद किसी की !
कोकिल के स्वर बनकर
जैसे
आई याद किसी की !!

मेरी साधों की दुनिया के डूबे सभी सितारे,
पर, मुझको साधों से प्यारे हैं साधों के प्यारे !
मेरे मन की नीरवता में
रंग भर देंगी किरणें—
नील-क्षितिज पर, वह देखो, मुस्काई याद किसी की !
कोकिल के स्वर बनकर
जैसे
आई याद किसी की !!

प्यार एक सांस है कि आ गई !

जबकि एक मात्र मीत खो गया,
जबकि स्वर बुझे, सँगीत सो गया,
जबकि लहर बिछ गई कगार पर,
जबकि प्राण आ गये उतार पर—
खुल गये नयन कि गगन खुल गया,
धुल गया हृदय कि चाँद घुल गया;
प्यास के अधर सिंचे कि जी गई,
हो गई अमर कि सुधा पी गई,
प्रीत कनखियों कि मुस्करा गई !
प्यार एक सास है कि आ गई !!

यह तरुण झुका कि वह उठी जरा,
यह गगन झुका कि वह उठी धरा—
दीप झिलमिला उठे कि रात है,
स्वप्न तिलमिला उठे कि प्रात है;
स्वयम् छटा की छटा निखर गई,
छन गई प्रभा, घटा बिखर गई;
तृप्ति की समाधि भंग हो गई,
ज्यों अतृप्ति एक रंग हो गई !—
चांदनी
कि
चांद में समा गई !
प्यार
एक
सांस है कि आ गई !!

●

इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना है कौन !

फागुन आया, जग बौराया,
कोयल बोली, फूल खिले,
और, दूर उस नील क्षितिज पर
धरती-अम्बर गले मिले,
किंतु, सदा के डाही पतझर ने छोटा-सा प्रश्न किया,
यह छोटा-सा प्रश्न किया—
इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना है कौन !

सावन आया, घन घहराया,
नदियाँ उमड़ीं, ताप मिटा—
दूर क्षितिज पर सरित-सिंधु का
अन्तर अपने-आप मिटा,
किंतु, सदा के डाही दिनकर ने छोटा-सा प्रश्न किया,
यह छोटा-सा प्रश्न किया—
इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिए बना है कौन !

सृष्टि बनी, स्रष्टा सकुचाया—
यह भी कोई चीज़ बनी !
जागा मानव, जगी मानवी,
जगी प्रेम की छाँह घनी,
किंतु सदा के डाही प्राणों के स्वर ने यह प्रश्न किया,
यह छोटा सा प्रश्न किया—
बनी मुखरता मानव के हित,
बना मानवी के हित मौन !
इसका निर्णय करो, सितारो—
किसके लिये बना है कौन !

•

—छः—

प्यार का गगन
उदास हो गया—
चाँद डूबने लगा !

कौन कह गया कि
राह मोड़ दो,
सत्य बन सकी नहीं कि जिन्दगी
ख़ाब की पहाड़ियों में
छोड़ दो,
कौन कह गया कि
सांस तोड़ दो !—
प्यार का गगन उदास हो गया,
चाँद ऊबने लगा,
चाँद डूबने लगा !!

कौन दूर गा रहा है भैरवी,
गीत का .खुमार टूटने लगा,
और,
प्राण के अनन्त-पंथ पर
कौन मिला, कौन छूटने लगा !
कौन दूर गा रहा है भैरवी,
गीत का .खुमार टूटने लगा !—

डूब गया स्वर किसी निगाह-सा,
बोल, राज़ खोल रही आह-सा,
आदमी कि रुप के गुनाह-सा !
कौन कहे, क्या कहे कि चाह में
आज चाह का विकास खो गया !
प्यार का गगन
उदास हो गया—
चाँद ऊबने लगा,
चाँद डूबने लगा !!

कौन पाश में विनाश भर गया !
कौन अधर पर अँगार धर गया !
और,
क्षणों के क्षणिक-उतार पर
कौन जिया और कौन मर गया !
कौन पाश में विनाश भर गया !
कौन अधर पर अँगार धर गया !—

बुझ गया अँगार उठी पीर-सा,
लहर बना, बहा सिंधु-नीर सा,
ज़िन्दगी कि याद की लकीर-सा !
कौन कहे, क्या कहे कि सृष्टि का
अंत कहीं आसपास हो गया !
प्यार का गगन
उदास हो गया—
चाँद ऊबने लगा,
चाँद डूबने लगा !!

●

तुम्हें पूछता हुआ गगन में उग आया है चाँद !
गगन में उग आया है चाँद
तुम्हें पूछता हुआ !
साँसों की यह गैल, साधना इठलाती चलती है,
कौन कामना अम्बर के भी अन्तर में पलती है !
मेरी तरह गगन का मन भी टीस-टीस उठता है ?—,
मेरी तरह गगन की भी छाती फटने लगती है,
ज्यों अनजानी छवि पलकों पर सो-सोकर जगती है ?
किस परदेशी से मुझ-सा ही भर-पाया है चाँद,
कि खोया भरमाया है चाँद,
गगन में उग आया है चाँद, किसे पूछता हुआ ??

पतझर की ऐंठी—अकड़ी लतरें भी लगीं पनपने,
दूर देश के रहने वाले लौट चले घर अपने !
अनचाहे, अनजाने पथ पर चलना एक कला है—
बगुलों की क़तार में मुझको किसी प्यार का भ्रम है,
साँसों के आने-जाने का जैसे निश्चित क्रम है !
किंतु, हँसी के मिस सावन के घन लाया है चाँद,
कि सचमुच मुस्काया है चाँद ?
गगन में उग आया है चाँद, किसे पूछता हुआ ??

ऐसे में तुम घर-बाहर की चिन्ताओं से कातर—
साँझ हो गई है, आले पर रख दो दिया जला कर !
आँसू पोछो, आँचल भीगेगा, जाड़े के दिन हैं—
दिन भर के हारे—माँदे की चिन्ता करना सीखो,
जलते-मस्तक पर हथेलियाँ हँसकर धरना सीखो !
मेरा क्या, मैं मोह व्यर्थ का, ज्यों माया है चाँद,
किसी की ज्यों छाया है चाँद !
गगन में उग आया है चाँद,
किसे खोजता हुआ !!

●

आधा चैत हुआ,
कि
जैसे पूरा चैत हुआ—

सूरज तपा, हवा लू बन लेती है बदन दबोच—
पंछी आसमान में उड़ते हैं, होता है सोच—
जीवन जैसे तपा-जेठ-सा
साँसे जैसे आंधी अंधड़—
किसी बाज़ से उलझ गया है
जैसे प्रान-सुआ।
आधा चैत हुआ,
कि
जैसे पूरा चैत हुआ—

भूले-बिसरे गीतों से सहसा बादल घिर आये,
आराहों—अवरोहों में जैसे बिजली बुझ जाये—
गाने और न-गाने की
कुछ ऐसी लाचारी है,
किसी सूर ने टूटी-बीना का
ज्यों तार छुआ!
आधा चैत हुआ,
कि
जैसे पूरा चैत हुआ—

सड़कों पर रिक्शे, इक्के, तांगे ऐसे चलते हैं,
अग्नि-देश के चौराहों पर ज्यों सपने जलते हैं—
पास यहाँ से दूर वहाँ तक
कुछ छल है, मृगजल है,
मेरी गति कि हिरन मर जाये
माँग न पाये दुआ।
आधा चैत हुआ,
कि
जैसे पूरा चैत हुआ—

•

आज कि पहिला पानी बरसा,
मन हो गया उदास.....

तुम्हें याद है,
हुए बहुत दिन, इसी पेड़ के नीचे,
किसी शक्ति ने
किसी शक्ति से प्राण हमारे खींचे ....
तब से यह बादल, यह पानी,
भरी-भरी बरसात,
मुझको लगती है जैसे हो किसी प्यार की रात—
घायल सपने खड़े हुए हों
भरी-आँख के पास।
आज कि पहिला पानी बरसा,
मन हो गया उदास ॥

*

तुम्हें याद है,
हुए बहुत दिन, इसी पेड़ के नीचे,
हमने—तुमने
सुधियों के कितने ही बिरवे सींचे—
तब से उमड़े-घुमड़े बादल
रुम-झूम घन घोर,

अक्सर बहा-बहा ले जाते हैं पलकों को कोर,
और, मुझे लगता है मेरे प्राण
कि पिघली-प्यास ।
आज कि पहिला पानी बरसा,
मन हो गया उदास ।।

तुम्हें याद है,
हुए बहुत दिन तुम रोईं, मैं रोया,
और आँसुओं पर
सिर धर सोने का बादल सोया—
आज कि कल की बात लग गई
जाने कैसे दिखने—
और अचानक बैठ गया हूँ
मैं यह कविता लिखने—
डर है कहीं न उग आये
मेरी साँसों पर घास !
आज कि पहिला पानी बरसा,
तन हो गया उदास
मन हो गया उदास ।।

●

वर्षा के मेघ कटे—
रहे-रहे आसमान बहुत साफ़ हो गया है,
वर्षा के मेघ कटे !
पेड़ों की छांव ज़रा-और हरी हो गई है,
बाग़ में बगीचों में और तरी हो गई है—
राहों पर
मेढक अब सदा नहीं मिलते हैं,
पौधों की शाखों पर कांटे तक खिलते हैं—
चन्दा मुस्काता है,
मधुर गीत गाता है—
घटे-घटे,
अब तो दिन मान घटे !
वर्षा के मेघ कटे !!

ताल का, तलैयों का जल जैसे धुल गया है,
लहर लहर लेती है, एक राज़ खुल गया है—
डालों पर
डोल-डोल गौरैया गाती है,
ऐसे में अचानक ही धरती भर आती है—
कोई ज्यों सजता है,
अन्तर ज्यों बजता है—
हटे-हटे,
अब तो दुख-दाह हटे !
वर्षा के मेघ कटे !!

साँस-साँस कहती है—तपन ज़र्द हो गई है—
प्राण सघन हो उठे हैं, हवा सर्द हो गई है—
अपने-बेगाने
अब बहुत याद आते हैं,
परदेशी-पाहुन क्यों नहीं लौट आते हैं !
भूलें ज्यों भूल हुईं,
कलियां ज्यों फूल हुईं—
सपनों की सूरत-सी,
मन्दिर की मूरत-सी,
रटे-रटे
कोई दिन रैन रटे—
वर्षा के मेघ कटे
रहे-रहे आसमान
बहुत साफ़ हो गया है !!

●

क्वांर के महीने के बादल ये
अकसर बरसते हैं,
स्वर ज्यों सरसते हैं,
धीमे से·····धीमे से·····धीमे से !

सामने की तुलसी के बिरवे हरिया गये,
ऊँचे से पंछी फिर पेड़ों पर आ गये—
कंठों के गीतों पर बिजली-सी टूट पड़ी,
कविता की एक कड़ी सहसा ही फूट पड़ी—
सुनता हूँ प्यार कई
प्यारे-से, भोले-से—
अपना दिल खोले-से—
बादल के काजल में बसते हैं
धीमे से·····धीमे से·····धीमे से !

क्वार के महीने के बादल ये
अकसर बरसते हैं,
स्वर ज्यों सरसते हैं,
धीमे से·····धीमे से·····धीमे से !

ऐसे में मेरा मन अजब-अजब करता है—
नीलकंठ बिजली के तार पर उतरता है—
गीले शरीर को बचाता नहीं पानी से—
उसकी कहानी और उसकी ज़बानी से
मैंने कुछ सोचा है, समझा है, सीखा है,
मुझको कुछ दूर कहीं ऐसा-सा दीखा है—
बाढ़ की नदी का मँझधार एक कूल है—
जीवन से प्राण-मन बचाना बड़ी भूल है !—
देखो तो, धरती पर बूंदों का मेला है—
मैंने सब झेला है—
इस पर भी प्राणों को
प्राण कहीं कसते हैं
धीमे से.....धीमे से.....धीमे से !

क्वांर के महीने के बादल ये
अकसर बरसते हैं,
स्वर ज्यों सरसते हैं,
धीमे से.....धीमे से.....धीमे से !

सहसा ही घेरों का जाल-घना कटता है,
भारी-सा बोझ एक अन्तर से हटता है—
करियाया-बादल वहाँ हलकाकर लाल हुआ,

अपने अनजाने में मुझको ज्यों ख्याल हुआ—
रूप ने लड़ाई सी छेड़ी है काल से—
जीवन के सपने हैं कमल-भरे ताल से !
उसे बहुत प्यारी है, उसे बहुत भाती है !
बरखा को गर्मी की याद बहुत आती है !
मौसम का उलट-फेर जीवन में चलता है—
बहुत बार खलता है,
क्योंकि हम तरसते हैं
धीमे से......धीमे से......धीमे से !

क्वांर के महीने के बादल ये
अकसर बरसते हैं,
स्वर ज्यों सरसते हैं,
धीमे से......धीमे से......धीमे से !

•

रूप के बादल यहाँ बरसे
कि यह मन हो गया गीला !

चांद—
बदली में छिपा तो बहुत भाया,
ज्यों किसी को
फिर किसी का ख्याल आया—
और,
पेड़ों की सघन-छाया हुई काली,
और, कोई सांस कांपी,
प्यार के डर से।
रूप के बादल यहाँ बरसे..............

सामने का ताल
जैसे खो गया है—
दर्द को यह क्या
अचानक हो गया है ?—
विहग ने
आवाज़ दी जैसे किसी को—
कौन गुज़रा
प्राण की सूनी-डगर से !
रूप के बादल
यहाँ बरसे.........

—इक्कीस—

दूर,
ओ तुम,
दूर क्यों हो, पास आओ
और, ऐसे में जरा धीरज बँधाओ—
घोल दो मेरे स्वरों में
कुछ नवल स्वर,
आज क्यों यह कंठ,
क्यों यह गीत तरसे !
रूप के बादल यहाँ बरसे
कि
यह मन हो गया गीला
कि यह मन..............!!

प्यास बहुत तेज़ है—
जीने, जी-पाने की प्यास बहुत तेज़ है—

अम्बर-पर के ऊँचे तारों ने मुझसे यह प्रश्न किया,
छोटा-सा प्रश्न किया—
तुम औ' हम साथ जले,
दोनों में कौन जिया ?—
तुमने जो भाव गुने—
हमने जो गीत बुने—
छोड़ो वह बात कि अब
उस पर सिर कौन धुने !
उससे कुछ ज्यादा सह-पाने की,
उससे कुछ ज्यादा कह-पाने की,
चिरजीवी-आस बहुत तेज है !
प्यास बहुत तेज है, जीने, जी पाने को.........

धरती पर की नीली-शबनम ने मुझसे यह प्रश्न किया,
छोटा-सा प्रश्न किया—
तुम औ' हम साथ गले,
दोनों में कौन जिया ?
तुमने जो स्वप्न कहे—
मन में दिन रैन रहे—
छोड़ो वह बात कि वे
बनकर बरसात बहे—
उससे कुछ ज़्यादा गल-जाने की,
उससे कुछ ज़्यादा ढल-जाने की,
कन-कन में बास बहुत तेज़ है !
प्यास बहुत तेज़ है.....जीने-जी पाने की.....

अन्तर के मानों-अभिमानों ने मुझसे यह प्रश्न किया,
छोटा-सा प्रश्न किया—
तुम औ' हम साथ चले,
दोनों में कौन जिया ?—
मेरे स्वर फूट-चले—
मुझको ज्यों लूट चले—
अब तक तो कहने-कहलाने की बात रही,
किन्तु, आज छवि की मुस्कानों मे

ज्योंकि प्रान छूट-चले—
स्वर से कुछ अधिक फूट-चलने की
प्रानों से अधिक छूट-चलने की
बान पड़ी—
उस पर अभ्यास बहुत तेज़ है—
श्वास बहुत तेज है।
प्यास बहुत तेज है·····
जीने, जी-पाने की,—
प्यास बहुत तेज़ है!·····
प्यास बहुत तेज़ है!!·····

●

प्रान बहुत जीते हैं—
गीतों के मरने का दर्द बहुत पीते हैं—
प्रान बहुत जीते हैं !

गीतों की लड़ियों से
तारों के झरने का एक तार टूट गया;
चंदा से, चाँदी से
अन्तर की धरती का नाता-सा टूट गया—
साँसों का चरखा है, गरमी है, बरखा है;
इस पर भी तानों में, मुर्दा-मुस्कानों में,
गान बहुत जीते हैं,
प्रान बहुत जीते हैं !!

जीतों की लड़ियों से
हारों के झरने का एक तार टूट गया;
हिरनी के छौने-सा,
किसी एक बच्चे के लाड़ले खिलौने-सा,
छूट गिरा हाथों से, सहसा ही फूट गया !
ऐसे में यादें क्या ? ढहती बुनियादें क्या ?
इस पर भी राहों में, साधों में, चाहों में
दान बहुत जीते हैं !
प्रान बहुत जीते हैं !!

प्यासों की लड़ियों से
अधरों के झरने का एक तार टूट गया;
लहरों के अन्दर की
धानी-परछाईं को कोई ज्यों लूट गया—
करती-अनकरती को, वाजिब को, भरती को
पाला-सा मार गया;
अपनी ही हिम्मत से कोई ज्यों हार गया—
लेकिन, यह पूरब है, नई साँस लेता है—
लेकिन, यह सूरज है, बहुत आग देता है—
ऐसे में ऊबो क्यों, आहों में डूबो क्यों ?
तुमने क्या देखा है ?—लम्बी-सी रेखा है—

बहुत-बहुत प्यारी है, आशा-सी क्वाँरी है;
कई मोड़ खाती है, जीवन तक जाती है;
हावों में, भावों में, इसके फैलावों में,
बस्ती तो बस्ती है,
बियावान-निर्जन-वीरान बहुत जीते हैं !
प्रान बहुत जीते हैं,
गीतों के मरने का दर्द बहुत पीते हैं,
प्रान बहुत जीते हैं !!

‘क्यों सितारे बोलते हैं रात भर !’

और

अन्य कविताएँ—

कविताएँ

क्यों
सितारे बोलते हैं रात भर !

जबकि साथों का बसेरा तट हुआ,
जबकि रजनी का सबेरा तट हुआ,
जबकि मैंने नाव अपनी खोल दी,
जबकि मुझसे दूर मेरा तट हुआ,
क्यों तभी बादल गगन मे छा गये,
और मुझको प्यार से समझा गये—
वे सभी जो प्राणमय हैं, जड़ नही,
द्वार छवि के खोलते हैं रात भर !
क्यों
सितारे बोलते हैं रात भर !!

जबकि मेरे दीप का जलना रुका,
जबकि मेरे प्राण का गलना रुका,
जबकि कोई आ गया मधु-स्वप्न बन,
जबकि मेरी सांस का चलना रुका,
क्यों तभी छिटकी गगन में चाँदनी,
और, मेरे कान में कह-सी गई—
जो नहीं मुर्दा-हुए बेजान हैं
वे अधर रस घोलते हैं रात भर !
क्यों
सितारे बोलते हैं रात भर !!

जबकि मेरी साधना मुरझा गई,
जबकि मेरी कामना कुम्हला गई,
जब झरे सब पात, पतझर आ गया,
नर्क को क्यों स्वर्ग की सुधि आ गई !
क्यों तभी यह सृष्टि सहसा रुक गई ?—
और, सत्ता-आसमानी झुक गई,
और देवों ने कहा दिल थामकर—
पी गये तुम, हम न आँसू पी सके,
हम कि मोती रोलते हैं रात भर,
हम कि पागल डोलते हैं रात भर !
क्यों
सितारे बोलते हैं रात भर !!

•

आसमान के चांद-सितारे
कितने प्यारे !—
उतने प्यारे
जितना प्यारा मैं अपने को,
जितना प्यारा, प्रिय, मैं तुमको !

यह तारों का जगत न केवल,
यह उन्माद किसी के जी का—
एक यहाँ पर, एक वहाँ पर,
एक किसी का, एक
किसी का !
एक विहग जो भटक गया है
परेशान है मंगल-तारा,
और, यहाँ धरती पर मैंने पंख समेटे, सांसे मोड़ीं,
और, यहाँ धरती पर मैंने आसमान आँखों में घोला,
और,
यहाँ मेरे ही साथी
इतने सारे,
मुझको क्या जानें बेचारे !
कितने प्यारे
आसमान के चांद-सितारे !!

यह तारों का जगत न केवल,
यह कंचन-सा प्यार किसी का !
यह आँखों की चमक न केवल,
यह आँसू का हार किसी का !
एक सितारा टूट गया जो
काँख उठा है अम्बर-सारा—
और, यहाँ मेरे कितने ही सपने टूटे, अपने छूटे—
और, यहाँ मेरे कितने ही अरमानों पर दूब जम गई,
और, यहाँ डर है कि कहीं मैं इनकी आंतें करूँ प्रवाहित !–
इसीलिए डूबे जाते हैं
नद-नदियों के कूल किनारे
सांझ-सकारे !
कितने प्यारे
आसमान के चांद-सितारे !!

अम्बर और धरा का अन्तर
मानव जाने, पशु पहिचाने—
मुझको तो लगता है जैसे
उलझ गये हैं ताने-बाने—
और, पड़ गये गीत पुराने !

ऐसे में, बोलो, किसको
भर-आँख निहारो,
ऐसे में, बोलो, किसपर
निज तन-मन वारो !
पर, इससे क्या, मेरे चेहरे के रँग पढ़ लो—
मेरे मन का प्यार नया है, प्रीत नई है—
मेरा चांद, प्रश्न का उत्तर—
देता ही जाता है मुझको,
एक नहीं, अनगिनत सहारे,
बुला रहा है हाथ पसारे !
कितने प्यारे,
आसमान के चांद-सितारे !!

आसमान के चांद-सितारे
इतने प्यारे,
जितना प्यारा मैं अपने को,
जितना प्यारा, प्रिय,
मैं तुमको !
आसमान.....................................!!

●

४

••• तुम्हारे लिए

आधी रात हुई कि
पुलक कर
एक सितारा बोला—
देखो, मुझको प्यार करो !

दूर चौक के घंटाघर में
अद्धा बजा कि प्रान—
आसमान आबाद, किंतु
नीचे धरती वीरान !
एक अकेला मैं कर दूँ कितनों की गिनती पूरी ?
एक अकेला मैं नापूँ कितने अपनों की दूरी ?
फिर,
मेरा तन-मन
दिन भर की मजदूरी से चूर—
फिर,
यह प्रान—
रेडियो की विषभरी घुटन मजबूर—
नींद नहीं आती है,
वरना
तुम विस्मृति बन जातीं—
अच्छा ही है—

मैं कहता हूँ अपने तन से—
खुद बीमार पड़ो,
औरों को
क्यों बीमार करो !
आधी रात हुई
कि पुलक कर एक सितारा बोला—
देखो, मुझको प्यार करो !!

आधी रात हुई कि ढुलक कर
एक सितारा बोला—
देखो, मुझको प्यार करो—
सभी गाड़ियाँ निकल चुकी हैं, पर है कोई लेट—
सन्नाटे का याकि फूल आया है सहसा पेट—
याकि मालगाड़ी का एंजिन खींच रहा है माल—
आज जिन्दगी भूल गई है जैसे अपनी चाल—
मौसम बदल गया,
साँसों में घुट-मरने की नरमी—
अरे, अभी से
प्राणों में बैसाख-जेठ की गरमी !
दूर बहुत हो वरना रखतीं हाथ तेज़ धड़कन पर !—

अच्छा ही है—
मैं कहता हूँ अपने मन से—
तुम खुद जगो,
ठगो
अपने को—
और, अकेले रोओ—
धोओ
पिछले वर्ष-माह-दिन—
जैसे बने सुबह तक, प्यारे,
हाहाकार करो !
आधी रात हुई कि ढुलककर
एक सितारा बोला—
देखो, मुझको प्यार करो !!

●

एक क्षण को हिल उठा आकाश ज्यों,
एक क्षण को ज्यों सितारे छिप गये !

वह नहीं मेरा, मुझे विश्वास है,
वह न मेरा, जो न मेरे पास है,
किंतु, मेरे प्राण में स्वर घोलकर
कौन कहता है कि यह मधुमास है !—
जो न कोकिल के मधुर स्वर बन सका,
जो न तितली के सुघर पर बन सका,
मैं उसे रस-सिद्ध गायक मान लूँ—
मैं उसे कवि का विधायक मान लूँ—

एक क्षण को हिल उठा आकाश ज्यों,
एक क्षण को ज्यों सितारे छिप गये !

वह न मेरे लोचनों का नीर है,
जो न सागर के हृदय की पीर है,
किंतु, मेरे प्राण में गति बाँधकर
मुग्ध मेरे प्राण की तस्वीर है !
जो न अपना भेद कुछ बतला सकी,
जो न ज़िन्दा हो सकी, मुस्का सकी,
मैं उसी से कुछ क्षणों का दान लूँ—
मैं उसे जीवन-प्रणेता मान लूँ !

एक क्षण को हिल उठा आकाश ज्यों,
एक क्षण को ज्यों सितारे छिप गये !

कौन मेरे व्यक्ति से अनजान है !
सृष्टि मेरे रूप का अभिमान है,
किंतु, मेरे प्यार का उपहास-सा—
स्वर्ग बंदी-प्राण की पहिचान है।
जो न भोगी भुक्ति से उपर उठा,
जो न योगी युक्ति से उपर उठा,
जो न बंधन-मुक्ति से उपर उठा,
मैं उसे ब्रह्मा कहूँ, शंकर कहूँ—
मैं उसी को पंच परमेश्वर कहूँ !

एक क्षण को हिल उठा आकाश ज्यों,
एक क्षण को ज्यों सितारे छिप गये ::

●

यह वसंत की शाम कि जैसे
तन-मन में कुछ खटक रहा है—
तूफ़ानों के आसमान में
जैसे पंछी भटक रहा है !—

सरसों का पीलापन जैसे सर्द हवा पर लहराता है—
आमों के बौरों का चुम्बन जैसे टूट-टूट जाता है—
एक राग है जो कि चांद के माथे से ज्यों खिसक रहा है—
एक प्यार है जो कि सितारों की सांसों में सिसक रहा है–

मैं—
जैसे निष्काम !
यह वसन्त की शाम......................

यह सूनी-सी सड़क सामने है, जैसे जीवन का सोना—
घायल सपनों-सा लगता है, यह आगे का महल-तिकोना-
पतझर के गहरे-घावों से ठूंठ खड़े हैं काले-काले—
बीती-बात कि दम घुट जाने पर भी जैसे केश सम्हाले,
हो जाये बदनाम !—
यह वसंत की शाम………………

मीत साथ है, जैसे कोई गीत कि टूट गया हो—
दर्द साथ है, जैसे कोई स्वार्थ कि छूट गया हो—
मोह साथ है, जैसे कोई आंख कि भर आई हो—
फागुन में भी दूर किसी ने ज्यों कजरी गाई हो—
ज्यों वर्षा में घाम !………………
यह वसन्त की शाम………………

●

● ● ● तुम्हारे लिए

पतझर के रूखे पल आज नहीं मिलते !—
नई-नई कोपल के नये होंठ हिलते !!—

अनजानी-प्रीत हुई अन्तर में गहरी—
बागों में लतर-लतर फैल-फूट फहरी—
लगता है, इसे नहीं देखा है बरसों !—
फटी-फटी पड़ती है खेतों में सरसों !!—

मह-महकर महक उठीं मधुवन की गलियाँ—
बदन तोड़, चटख पड़ीं डालों पर कलियाँ—
चुप-चुप से तोतों ने पकी-मटर कुतरी—
आमों के बौरों पर सोन-परी उतरी—

रंगों के कलाकार आज नहीं सुनते—
तितली की पलकों पर इन्द्रजाल बुनते !

नस-नस में रस के घन उमड़-घुमड़ छाए—
हवा गिरी पड़ती है, क़दम लड़खड़ाए !
कभी कहीं साँसों से प्यार गया आँका ?—
गगन आज ताल से, तलैयों से झाँका—

नई-नई सजधज है, नया-नया गहना—
नदियों की लहरों ने नीलम-सा पहना !
इतना समझाया, पर एक नहीं माना—
पंछी ने ऊँचे से छेड़ दिया गाना !

आंखों के डोरों पर राग लगे तुलने—
कोयल के स्वर-स्वर में प्राण लगे घुलने !—

घुलने का मौसम है—
घोलो, तन घोलो !
आया मधुमास,
आज खोलो मन, खोलो !!

●

मेरा यदि कुछ खो गया तो क्या करूँ !

देखता हूँ सामने गुरु-गिरि खड़े,
देखता हूँ सामने संकट बड़े,
और, सुनता हूँ हृदय की बात भी—
सिर मुड़ाते ही यहाँ ओले पड़े !

किंतु, चोटी पर चढ़ूँगा आज मैं !
किंतु,
अपना विधि गढ़ूँगा आज मैं !
मेरा यदि कुछ खो गया
तो क्या करूँ !!

देखता हूँ जिन्दगी का क़ाफ़िला,
देखता हूँ मैं जवानी का क़िला,
और, सुनता हूँ हृदय की बात भी—
मिट गई दुनिया, रही-आई शिला !

किंतु, ओसिस देखता हूँ आज मैं—
किंतु,
अपना देखता हूँ राज मैं !
मेरा यदि कुछ खो गया
तो क्या करूँ !!

देखता हूँ स्वर्ग वैभव से भरा,—
इन्द्र उसकी उर्वसी-सी अप्सरा,—
और, सुनता हूँ हृदय की बात भी—
स्वर्ग ऐसे सौ ख़रीदे यह धरा !

स्वर्ग पृथ्वी को बनाना भूल है !
देवताओं को मनाना भूल है !
मेरा—
यदि कुछ खो गया तो क्या करूँ !!

●

जेठ तपता है
कि पंछी गगन में उड़ते नहीं हैं—
जेठ तपता है
कि नदियों की रवानी तच गई है,
एक छाया है कि पेड़ों के सहारे बच गई है—
..............जेठ तपता है।
जेठ तपता है
कि खेतों में नहीं पौधा बचा है—
जेठ तपता है
कि मेड़ों पर नहीं गाती दोपहरी—
लग रही है
एक तिनके-सी नहर की धार गहरी !
पंछियों के बोल
बजते हैं कि जैसे ताप बोले—
पंथियों की सांस
जैसे अग्नि अपने-आप बोले—
और, कोई भेद खोले,
जो न कोई जानता हो,

किंतु, डर की बात हो
जिसको सदा पहिचानता हो.........
जेठ तपता है !

जेठ तपता है
कि लू से सांस झुलसी जा रही है—
जेठ तपता है
कि जैसे प्रान मुँह को आ रहा है—
जेठ तपता है
कि दरिया आग का लहरा रहा है—
किंतु, हर-हर लहर से सावन उगेंगे,
किंतु, हर-हर दहकते अंगार से मोती खिलेंगे
बादलों के हंस जिनको प्यार से हँसकर चुगेंगे—
अंधड़ों का हर थपेड़ा
पेंग झूले की बनेगा,
आँधियों की हर हथेली में कि मेंहदी रच उठेगी—
यह समय की बात है,
कुछ धैर्य रखो..............
मानता हूँ मैं कि

सचमुच आज है खाली कलाई,
किंतु, देखोगे कि
कल धरती उठी ऊँची, उठी ऊँची
कि नभ को समुद राखी बाँध आई !
जेठ तपता है !
जेठ तपता है
तपे..........................

तुम आज में कल को निहारो—
पलकियों पर सूर्य के
तुम चांद की किरनें उतारो—
आज में कल को निहारो !
जेठ तपता है, तपे;
किंतु मानव सदा मानव है—
नहीं पथ में कहीं सहमे, कहीं सिहरे,
कहीं थककर कँपे !
जेठ तपता है, तपे.........
यह जेठ तपता है,
तपे !!

●

दूर पपीहा बोल रहा है—
दर्द बनाया,
अन्तर तम में जिसे छिपाया
उसी राज को आज पपीहा खोल रहा है !
पागल है क्या, कही पपीहा बोल रहा है !!

यह तपता आषाढ़,
कलपता-हुआ ज़माना,
यह गरमी की सुबह
कि सूरज उगता-उगता,
ज्यों
प्राणों मे मधुर याद की चिनगी रखकर—
आग लगाये,
इन्हें जलाये
कोई अपना सा बेगाना—
दूर देश में बसता हो जो,
पर
सांसों को कसता हो जो,

इन्द्र धनुष को घेर घार कर
आठों पहर बरसता हो जो
सोने-चाँदी-काजल का कजरारा बादल—
दूर देश में बसता हो जो,
पर,
सासो को कसता हो जो !!

यह पेड़ों की पाँत—
पडी है यहाँ अकेली,
जैसे कोई नार-नवेली,
हाथ हिलाकर,
हृदय दिखाकर
कहे पुरुष से—
मुझको तुमसे प्यार नहीं है,
क्या मेरा घर बार नहीं है!
तुम,
मेरे अतीत की छाया,
मेरे पीछे पड़े हुए हो,

मेरे सम्मुख खड़े हुए हो,
बिल्कुल मेरे भाग्य सरीखे—
आने वाले
काले-काले
उजियारे दिन,
या
अँगारों से उजियाली
डसने वाली,
काली-काली रातें अनगिन !—
सचमुच ही तुम मेरे पीछे पड़े हुए हो,
मेरे सम्मुख खड़े हुए हो !

यह सब कुछ है,
किंतु पपीहा बोल रहा है,
राज़ हृदय के खोल रहा है—
बिल्कुल वैसे
जैसे मैंने
अपने अन्तर तम की साधें गीत बनाईं,

और सुनाईं दुनियाँ भर को,
जिनको धरती दोहराती है,
किंतु सितारे भूल चुके हैं,
फूल नहीं है मेरे सपने,
कैसे कह दूँ—
वे क़ब्रों पर फूल चुके हैं !.........

पर, मेरे मासूम पपीहे,
अधर-अधर पर,
हृदय-हृदय पर
डोल, पपीहे,
घूम, पपीहे,
मौत की तरह झूम, पपीहे !—
पर, न मुँह खुले—
गलता जा, बस गलता ही जा—
वीराने की एक अकेली कुटिया के
धुंधले दीपक-सा
जलता जा, बस, जलता ही जा—
तब तक

जब तक धुआँ न उट्ठे;
वीराने पर गगन न टूटे,
मेरा-तेरा साथ न छूटे !
किंतु अभी तो..............
बहुत दूर हैं ऐसी घड़ियाँ,—
किंतु, इस समय
तू न इस तरह बोल, पपीहे—
राज़ न अपने खोल, पपीहे !..........

मैं इतना-कुछ कह-सुन आया,
मेरे स्वर उतार पर आये,
लेकिन फिर भी—
दूर पपीहा बोल रहा है—
दर्द बनाया,
अन्तरतम में जिसे छिपाया,
उसी राज़ को आज पपीहा खोल रहा है !
पागल है क्या,
कहीं पपीहा बोल रहा है !!

हारे लिए

एक ज़माना हुआ कि
मेरा कंठ खुला था—

एक ज़माना हुआ कि
गुनगुनाने की मन में साध जगी थी—
भली-बुरी जैसी हो दुनिया हो औरों को,
मुझको तो उस दिन यह दुनिया भली लगी थी—
और,
इस तरह भली लगी थी,
जैसे
अध-अंधेरी दुनिया में तारों के फूल खिले हों,
जैसे
तारों की दुनिया में
युग-युग के परदेशी,
अपनों से तो क्या,
ग़ैरों से आन मिले हों!

पर,
यह तारों की दुनिया है,

अपनी यह धरती धरती है—
यहाँ प्रीत की राजकुमारी प्यार नहीं करने पाती है,
वह तो दिन-माहों वर्षों में
एक मात्र जीने का, जैसे सम्भव हो, उपक्रम करती है,
और,
रात की परतों के सँग,
पूर्व दिशा के उजियाले में
हँस-हँस कर ऐसे मरती है,
जैसे खिलते हैं
मधुवन में
रंग-रँगीले,
पीले-नीले फूल प्रात के,
जिन पर पड़ी ओस,
किरनों के पंख लगाकर,
उड़ जाती है वहाँ—
जहाँ जग पहुँच न पाता,
और,
दूर पर बैठा कोई उसे देख ऐसे मुस्काता ।

जैसे मरघट के पीपल पर
बैठ दूर की गौरैया
कुछ ऐसा गाये,
जिसे धरा क्या, कुटिल-स्वर्ग भी समझ न पाये !

यह सपनों के चौराहे हैं—
कहीं आ गया
यहाँ कभी भी प्राण किसी का,
भूला-भटका,
बेचारा,
क़िस्मत का मारा—
उत्तर, दक्खिन, पूरब, पच्छिम
कुछ भी नहीं समझ पायेगा,
अपने दिल की गहराई में ऐसे डूबे-उतरायेगा,
जैसे डूबे गहन-क्षितिज में पतला-सा सोने का बादल,
जिसकी रतनारी-छाहों में तरुण हिमालय वृद्ध हो गया—
उसका सारा धैर्य खो गया—
जैसे मैंने सब कुछ खोया

इस जीने की तैयारी में—
विष पीने की तैयारी में !

सचमुच सपने सपने ही हैं,
इनमें सत्य नहीं पलते हैं !
एक ज़माना हुआ कि मेरा कंठ खुला था,
एक ज़माना हुआ कि
गुनगुनाने की मन में साध जगी थी !
भली-बुरी जैसी हो दुनिया हो औरों को,
मुझको तो उस दिन यह दुनिया भली लगी थी !!.........

•

साँवली-सी
यह सुनहली साँझ—
यह आकाश—
जिन्दगी के सामने
ज्यों खुल रहे हों जिन्दगी के पाश !

पर नहीं, यह
एक-दो-दस-बीस दिन की बात है
कि
पलकियों पर के टपकते आँसुओं-से
उमड़कर घनघोर बादल आ गये,
और, ऐसे कुल गगन में छा गये,
ज्योंकि मेरे प्यार की परछाइयों को
दर्द का कोहरा तड़पकर घेर ले,
ज्योंकि मेरे प्राण में सावन-हिंडोला
डालकर मुस्कान कोई
पेंग ले !
इस तरह से उमड़कर घनघोर बादल आ गये,
और, ऐसे कुल गगन में छा गये !!

इस जीने की तैयारी में—
विष पीने की तैयारी में !

सचमुच सपने सपने ही हैं,
इनमें सत्य नहीं पलते हैं !
एक ज़माना हुआ कि मेरा कंठ खुला था,
एक ज़माना हुआ कि
गुनगुनाने की मन में साध जगी थी !
भली-बुरी जैसी हो दुनिया हो औरों को,
मुझको तो उस दिन यह दुनिया भली लगी थी !!.........

●

साँवली-सी
यह सुनहली साँझ—
यह आकाश—
ज़िन्दगी के सामने
ज्यों खुल रहे हों ज़िन्दगी के पाश !

पर नहीं, यह
एक-दो-दस-बीस दिन की बात है
कि
पलकियों पर के टपकते आँसुओं-से
उमड़कर घनघोर बादल आ गये,
और, ऐसे कुल गगन में छा गये,
ज्योंकि मेरे प्यार की परछाइयों को
दर्द का कोहरा तड़पकर घेर ले,
ज्योंकि मेरे प्राण में सावन-हिंडोला
डालकर मुस्कान कोई
पेंग ले !
इस तरह से उमड़कर घनघोर बादल आ गये,
और, ऐसे कुल गगन में छा गये !!

पूछ लो इन जंगलों से,
घने पेड़ों की सजीली छाँव से—
किस तरह से एक कोंपल
बादलों की बूँद के नीचे खिसककर मर गई,
किस तरह से पांखुरी-वह
बिजलियों के तेज़ कांटों की
नुकीली सांस के नीचे
सिसककर मर गई !
पूछ लो इन जंगलों से,
घने पेड़ों की सजीली छाँव से !!

और, फिर तो,
इस तरह से टूटकर बरसीं घटायें,
भूमि क्या, आकाश सारे बह गये—
इन्द्र धनुषों के सहारे बह गये—
इस तरह से टूटकर बरसी घटायें !
किंतु, फिर भी
दूर पर जलते दिये की लौ

कि बूँदों की सलाखों के घने-वन पारकर
ज्यों हाँफती-सी,
शीत से ज्यों काँपती-सी,
पास मेरे आ गई !—
और, मैंने एक उस लौ के सहारे,
याद के वीरान घेरे,
सौ यमों की यातना से भी अँधेरे,
इस तरह से घेर डाले,
जिस तरह से
निर्जनों में
निर्झरों की
निरखती-छवि
प्यार से पत्थर सम्हाले !
और, मैंने एक उस लौ के सहारे,
याद के वीरान घेरे
इस तरह से घेर डाले !!

किंतु, बीते अनगिनत दिन रात,
यानी, यह कि मेरे सामने ही आज
खिल रही है यह सुनहली साँझ,
यह आकाश—
जिन्दगी के सामने
ज्यों खुल गये हों
जिन्दगी के पाश !!

●

रे लिए

ो बजे हैं—
रात इतनी जा चुकी है—
एक-मेरी सांस है कि
किसी पथिक की दूर मंज़िल
राह बनकर सामने उसके अड़ी है,
या समय की नब्ज़ है
जो
चल रही थी, चल रही थी,
रुक गई है !
दो बजे हैं !!

यह सितारे टूटते हैं—
या किसी कवि के मरण पर, छवि-वरण पर
दूसरे कवि के हृदय से गान सहसा फूटते हैं !
ये सितारे टूटते हैं—

ये सितारे टूटते हैं—
स्वप्न जैसे महक उट्ठें,
दर्द के अंगार जैसे दहक उट्ठें,
चार दिन की चांदनी में चूर होकर,
प्यार से मजबूर होकर,

चोंच में तिनके दबाकर,
गगन की गहराइयों में दो विहग ज्यों चहक उट्ठें !
और,
फिर मर जाये चंदा और उसकी चाँदनी भी—
हड़बड़ा, पर फड़फड़ायें विहग,
टूटे नभ धरा पर,
लोक लें उनको समन्दर की लहरियाँ—
और,
जैसे बादलों की छाँह पाकर,
आंसुओं की तान चादर
नदी-निर्झर मोह से भर जायें,
ठीक वैसे
एक-दूजे से मिलाकर चोंच
दोनों
अनमने पंछी
कि साधें साथ साँसें, और फिर मर जायें—
यों सितारे टूटते हैं !!

यह प्रहर है
दर्द का, दुख का, दया का,
क्योंकि मेरी नींद टूटी,
और, मेरी बाँह से वह प्यास छूटी,
जो प्रभाती बन गई माँ के नयन में—
जो गई बन
दृष्टि की पहिली किरन,
फिर,
मधुर-मधु से बँधी,
साँसों से सधी-सी,
सृष्टि की मुस्कान—
और,
फिर तो,
और थोड़ा समय बीता,
बन गई भगवान !

किंतु,
अब तो बज चले हैं चार—

किंतु, फिर भी इन घरों में,
सामने के इन घरों में,
कौन है जो जागता है,
एक मेरा प्राण है
जो दूर मुझसे भागता है !

कहते हैं,
लो यह पतझर भी शुरू हो गया —
यह भारी-भारी,
उदास-से,
भरे-भरे
यह पतझर के दिन !

यदि मीनार 'म्योर-कॉलिज' की
जो मेरे सम्मुख यों तनकर अड़ी हुई है,
खड़ी हुई है युग-युग से यों,
तो, यह पेड़ों के पत्ते ही क्यों झर जाते हैं,
तो क्यों प्यार किसी का जीता,
और,
किसी के हीरे-मोती-तारों-से
अरमान असंख्यक जीते हैं ज्यों मर जाते हैं !

यदि यह उत्तर है,
दक्षिण यह,

—उनहत्तर—

पश्चिम यह है और पूर्व यह,
और रहेंगीं सभी दिशायें
यह ज्यों की त्यों,
आनेवाली अनगिनती सदियों तक,
तो क्यों—
पेड़ों के पत्ते ही ऐसे बेबस होकर झर जाते हैं,
जैसे इनकी इच्छाओं का कुछ भी मूल्य नहीं है,
जैसे इन्द्रियजित् हैं यह सब
वीतराग,
निष्काम, बे सबब ?

यदि ऐसा है
तो स्वर्गों को आसमान से,
गुरु-गुमान से नीचे फेंको,
और कहो उन इन्द्र-वरुण से—विष्णु-करुण से—
अरे, देवताओं, जड़ तो जड़ है,
तुम तो चेतन से भी ऊपर सदा रहे—
पर, वे वचन न तुमने कहे,
कि जिनसे बड़े प्रमाणित हो सकते तुम

पीले-पीले पत्तों से भी,
छोटे-छोटे पत्तों से भी,
इन पतझर के पत्तों से भी !

इसी तरह हर साल, हर जगह पत्ते झरते,
पत्ते मरते,
फिर भी मुझमें जीवन भरते—
और, इस तरह जीवन भरते,
जैसे कोई घायल प्राणी
अपने मन के अनगिन घावों में से चुनकर एक घाव को
खोल-खोलकर देख रहा है,
जैसे इन उदास शामों में,
उसके प्रियतम ने, उसके कानों में,
आकर यह चुपचाप कहा हो—
एक नहीं सारे घावों को धोओ-पोंछो,
पोंछो-धोओ,
कभी न अपना साहस खोओ—
केवल इतना करो कि तुम बस जीते जाओ,

अमृत कहो या कि विष मानो,
तुम हँस-हँसकर पीते जाओ—
तब तक
जब तक
शंकर अपने आसमान से
इस धरती पर उतर न आयें,
औ, इन रूखे-सूखे—
पत्तों से न स्वर्ग की चिता जलायें—
और,
झुकाकर शीश कहें—
तुम इतने दिन जीते आये हो,

इतना दुख पीते आये हो,
जितना नीलकंठ बनकर भी
जहर बनाकर हम न पी सकें !
सचमुच,
तुम हमसे महान हो !!

कहते हैं—
लो, यह पतझर भी शुरू हो गया !—
यह भारी-भारी,
उदास-से
भरे-भरे,
ये पतझर के दिन !!!

● ● ● तुम्हारे लिए

दो कबूतर—
एक नर था, दूसरा मादा—
चोंच लाकर पास बोले—
करो हमसे प्यार का वादा !

किंतु, दो क्षण बीतने पर,
नर,
न बँध पाया किसी के बन्धनों में जो,
समझकर उड़ गया,
और, मादा की निगाहों का
सुनहला-राजपथ ज्यों
कंटकों में मुड़ गया !

और, ऐसे में कि कल की एक घटना
आज के कुछ पास है—
दूब तो क्या,
घास है—
जिसे
अंग्रेज़ी—मशीनों की मदद से खूब पाटो,
चरो या काटो—

—मोहसर—

जो करो चाहो—
दूर की उठती निगाहो !

सोचता हूँ—सत्य है वह क्षण कि जब हम पास आये—
सत्य है वह क्षण कि जब यह प्राण प्राणों में समाये,
या कि वह क्षण
जो कि आया और सब झुठला गया ?
कह गया—यह तुम्हें लगता है नया,
यह पुरातन है..........नहीं, सच भी नहीं है—
नहीं ऐसा छल कहीं है !—
किंतु, इस भूचाल में भी,
किंतु, ऐसी भ्रान्ति के जंजाल में भी
सत्य है केवल परिस्थित एक छन की—
जब कि खुलती है गंठीली-गाँठ मन की !—
जब कि 'मैं' को 'तुम' सदा कहना भला लगता—
जब नहीं बँधकर उसे रहना भला लगता—
किंतु, अपने मोह से,
व्यामोह से,
जो उठ नहीं सकता कभी ऊपर—

इन्द्रधनुषी-स्वप्न रखता है सँजोकर—
और, फिर तो घात हो तो हो,
मात पर मात हो तो हो,
न जो पर मानता है
कभी उसका एक भी मोहरा गया है पिट—
दूसरे ही छन बदलता है कि ज्यों गिरगिट !—
कहो मैं छन कहूँ या मन ?
मन कहूँ या छन ?
छन कहूँ ! तो, छन सही—
पर, बात कहने को रही
कि क्या हरा है और क्या पीला, न जो पहिचानता है,
धन्य वो छन जो न आगा और पीछा जानता है !
धन्य,
सचमुच धन्य,
केवल धन्य है वह !!

सोच में हूँ—
लूँ
चढ़ा बाँहें

कि लाऊँ आँख भर-भर—
दो कबूतर—
एक नर था, दूसरा मादा—
चोंच लाकर पास बोले—
करो हमसे प्यार का वादा !!!

रचनाएँ

ारे लिए

छोटी सी बेंच,
घिरी हुई सघन लतर—
एक रास्ता इधर,
एक रास्ता उधर—

बादल की छाँव है कि टूटे-से पल—
मुरझाते जाते हैं खिले कमल दल—
बाहों में सपनो की भरी-भरी आंख—
तितली की ज्योंकि उलझ जायें कहीं पांख—
ऐसे में मर्मर-सा झाँक उठा कौन ?
ऐसे में कहीं टूट सकता है मौन !
इस पर भी बजते हैं झुरमुट के बाँस—
इस पर भी फँसती है साँसों में साँस—
यह ज़मीन भावों से लिपी हुई है,
हवा यहीं कहीं पास छिपी हुई है !
रस जैसे नवरस मे पगा हुआ है,
प्यार यहाँ पूजा में लगा हुआ है !
अक्षत के क्षण हैं,
यह चन्दन के क्षण !
वन्दन के क्षण हैं,
अभिनन्दन के क्षण !

किन्तु,
प्रान,
चलो, उठो, खतम करो बात—
सुनती हो, कहीं दूर बजते हैं सात—
छोटी-सी बेंच—
घिरी हुई सघन-लतर—
एक रास्ता इधर,
एक रास्ता उधर !!

लैम्प-पोस्ट की सभी बत्तियाँ जलती हैं—

इस पर भी—
मन के अंदर अँधियारा है—
इस पर भी—
कुछ बातें हैं जो खलती हैं—
लैम्प-पोस्ट की सभी बत्तियाँ जलती हैं !—

ऑफिस की 'रेड-टेप' साँस की सीभन है—
ऊबासाँसी ज्यों प्राणों की खीभन है—
मजदूरों के 'स्लम्स'-सरीखे नर्कों में,
कैसे कह दूँ,
यहाँ सिसकियाँ पलती हैं !
लैम्प-पोस्ट की सभी बत्तियाँ जलती हैं !!

युद्ध-नीति की हार-जीत भावों का भ्रम—
राजनीति के दाँव-पेंच जीवन का क्रम—
'वादों' की यह रात कि सोते से
उठकर
यहाँ हिचकियाँ जैसे आँखें मलती हैं !
लैम्प-पोस्ट की सभी बत्तियाँ जलती हैं !!

—पचासी—

युग-द्रष्टा-सा रूप कि जैसे बिखरेगा—
युग-स्रष्टा-सा प्यार कि रवि में निखरेगा—
आशा और निराशा के दोराहों पर,
अश्रुकणों के मंगलदीप जगाती-सी,
केवल कुछ छायायें हैं जो चलती हैं !—
लैम्प-पोस्ट की सभी बत्तियाँ जलती हैं—

इस पर भी मन के अन्दर अँधियारा है,
इस पर भी कुछ बातें हैं जो खलती हैं !—
लैम्प-पोस्ट की सभी बत्तियाँ जलती हैं !!

• तुम्हारे लिए

बीबी रानी !—
'रानी बीबी' नहीं कहूँगा—
तुम बिगड़ोगी—
फिर, यह तो हो गया नाम है और किसी का !
यह सपनो के चौराहे हैं—
सुनो,
आज मैं यहाँ आ गया
जैसे मुस्काई हो क़िस्मत—
जिसको मैंने कभी न माना—

किंतु,
अकेले, सोच रहा हूँ—
बहुत विवश-मजबूर जिन्दगी नहीं कटेगी—
दुख की धरती नहीं फटेगी—
जिसमें समा जायें वीरानेपन की यह
उखड़ी-सी-साँसें—
व्यर्थ बन गई हैं जो फाँसें !
बहुत अकेला, बहुत अकेला
छोड़ दिया है तुमने मुझको, बीबीरानी !

सुनती हो—
यह गरज रहे हैं काले बादल—
पर, लगता है
अभी नहीं अँजता है
कदली-वन की
किसी घटा की आँखों का फैला-सा काजल—
बहुत दूर हैं आँसू-शीतल—
जिनको दुनिया कहती है जल !

सुनती हो—
यह बाहर बादल गरज रहे हैं—
चाँदी के काजल के-से हैं—
रुई उड़ी फिरती है जैसे किसी दीन को,
जो धुनने का सरंजाम कर,
चिलम चढ़ा, दम लगा रहा हो,
भूल गया हो काम-धाम सब—
नीचा-ऊँचा, धरती अम्बर !
दूर हवायें ज्यों सजती हैं—
पेड़ों की शाखें बजती हैं—

—अट्ठासी

व्यर्थ किसी का दम भरती हैं,
ऐसी आवाज़ें करती हैं,
जैसे गाड़ी से आती हैं
जब जाता है प्यार किसी का—
बहुत दूर, परदेस देस तज—
जब मन की पाती लिखने को
कहीं नहीं मिलता है कागज़.....

पढ़ता हूँ—
रोमान्सवादियों में 'शेले' का धर्म प्रेम था—
'वर्ड्सवर्थ' का धर्म प्रकृति थी—
सोच रहा हूँ—
क्यों न हमारा धर्म
ज़िन्दगी हो—
जीवन हो,
जो पी पायें,
जो जी पायें हम अपने ढंग से मनमाने—
बीबी रानी—
बड़ी बात है,

सुनती हो—
यह गरज रहे हैं काले बादल—
पर, लगता है
अभी नहीं अंजता है
कदली-वन की
किसी घटा की आँखों का फैला-सा काजल—
बहुत दूर हैं आँसू-शीतल—
जिनको दुनिया कहती है जल !

सुनती हो—
यह बाहर बादल गरज रहे हैं—
चाँदी के काजल के-से हैं—
रुई उड़ी फिरती है जैसे किसी दीन को,
जो धुनने का सरंजाम कर,
चिलम चढ़ा, दम लगा रहा हो,
भूल गया हो काम-धाम सब—
नीचा-ऊँचा, धरती अम्बर !
दूर हवायें ज्यों सजती हैं—
पेड़ों की शाखें बजती हैं—

व्यर्थ किसी का दम भरती है,
ऐसी आवाजें करती है,
जैसे गाड़ी से आती हैं
जब जाता है प्यार किसी का—
बहुत दूर, परदेस देस तज—
जब मन की पाती लिखने को
कहीं नहीं मिलता है कागज़""

पढ़ता हूँ—
रोमान्सवादियों में 'शैली' का धर्म प्रेम था—
'वर्ड्सवर्थ' का धर्म प्रकृति थी—
सोच रहा हूँ—
क्यों न हमारा धर्म
जिन्दगी हो—
जीवन हो,
जो पी पायें,
जो जी पायें हम अपने ढंग से मनमाने—
बीबी रानी—
बडी बात है,

आज सत्य है·········कल की बात खुदा ही जाने !—

लेकिन, यह क्या,
यह लो, पानी लगा बरसने—
यह पानी भी लगा बरसने !—
बहुत अकेला, बहुत अकेला
छोड़ दिया है तुमने मुझको,
बीबी रानी—
बहुत अकेला·········

मैं""मैं कि अपना अहम् छोड़ूँ !—
यह ममीरा है कि जिसको बड़ी-आँखों में
सदा ही चाव से मेरे बुर्जुगों ने लगाया है—
बताया है—
तुम्हारी आँख में कीचड़ अगर आ जाय,
तुम्हारी आँख के आगे धुँधलका-सा अगर छा जाय—
तुम करो उपयोग इसका—
और, सदा प्रयोग जिसका !—
तुम्हें बिल्कुल साफ़ दीखेगा—
जमाना दौड़ आयेगा तुम्हारे पास, तुमसे तौर सीखेगा
कि जिससे आँख की तकलीफ़ उसको फिर नहीं होगी—
तुम्हें क्या मालूम,
हमने बात इतनी सीखने को,
किस तरह की
और कितनी यातना भोगी !

और है यह बात दुनिया को नहीं हम भा सके—
किन्तु, सिर के बल सारे दूधिया जो हो गये हैं,

धूप में ही यह नहीं अब तक पके !—
क्या हुआ जो
रूढ़ियों से, संस्कारों से बँधे हम
वक्त की आवाज पर
सहमे, डर, सिहरे,
मगर बाहर न घर के आ सके !.....
हम बताते हैं तुम्हें जो राह वाजिब है वही,
और बहबूदी तुम्हारी उसी में है—
तुम हमारी बात मानो,
और, बस, उस पर चलो !—
अभी क्या है !—
कली हो,
फूलो-फलो !!

मैं..........
मैं कि अपना अहम् छोड़ूँ ?—
यह ममीरा है कि जिसको बड़ी आँखों मे
सदा से चाव से
मेरे बुजुर्गों ने लगाया है !!!

•

कलकत्ते के बड़े शहर में
बहुत बड़ी तबियतवाला मैं झटक गया हूँ.....
सभी परिचितों का, अपनों का,
बेगानों का कहना है—कुछ भटक गया हूँ !
कैसे हृदयवान् शायर ने इसे गढ़ा था,
बड़ा शेर है, मैंने भी यह कहीं पढ़ा था ;
'बैठ जाते हैं जहाँ छाँव घनी होती है,
हाय, क्या चीज़ ग़रीबुलवतनी होती है !'
सचमुच है कितनी विचित्र गति !
सघन भीड़ में खो-खो जाती है जैसे मति !
जाम होगई इन ट्रामों में और बसों में,
जैसे कुछ जम-जम जाता है तनी-नसों में !

कोई गिरे याकि मर जाये, घात नहीं कुछ—
मानवता के इस विकास में प्राण-हरण भी बात नहीं कुछ !
संस्कृति जैसे नई-नवेली, बिना साथ के, बिना सहेली,
राजपथों पर अकसर इठलाती चलती है,
एक शिला जैसे गलती है !

कई-कई मंजिल वाली यह बड़ी हवेली
जितनी ऊँची, उतना नीचा मानव का क़द—
बेमानी, फिर मुर्दा बेहद !
कहिये, इतना सब पढ़-सुनकर
हुए न आप अभी तक गद्गद् !
अति अनन्य हैं !
आप धन्य हैं !!

●

पान की दूकान
पानी, और कीचड़, और दलदल—
हो उठा मन आप चंचल—
क्योंकि मुझको तरस आया—
क्यों न मैं भी बरस पाया
टूटकर या रिमझिमाकर !

और,
सहसा,
कल्पना ने
बाढ़ से उमड़ी-नदी की
एक पतली-सी लहर से मन लुभाया—
लहर आती है कहाँ मँझधार से वीरान-तट पर,
और, नाविक बाँधता है नाव कसकर—
लहर, आखिर को लहर है,
अमृत में चाहे घुले क़तरा नहीं-सा,
असर है,
होकर रहेगा,
जहर आख़िर को ज़हर है !

सोचता हूँ—
असर रक्खे,
असर डाले;
रीढ़ की हड्डी करे सीधी,
जरा अकड़े-तने,
ठान कोई तो ठने—
आदमी यदि बन न पाये अमृत—
तो विष ही बने !!

●

बादल यहाँ आते हैं—
जब मन करता है
तब टूटकर बरसते हैं,
वरना निकल जाते हैं !

कैसा यह पानी है !—
अदभुत हैरानी है—
धोबी आसानी से कपड़े नहीं देता है—
बातें बनाता है,
रुपये ले लेता है—
बाबूजी मेरा घर पानी से बैठ गया !—
बच्चों के सिर पर अब छाया तक नहीं रही
दया नहीं आती है,
कैसा निर्दयी दई !

कैसा यह पानी है !
अदभुत हैरानी है—
कैसे बचाऊँ यह पैंट नया, सूती है—
बरसाती रिसती है,

इसने बरसातों की शक्ति नहीं कूती है—
मुझे याद आती है उस दिन की बातों की—
बाबूजी, एक बार ले देखें,
बार-बार आयेंगे—
ऐसा अनमोल माल,
इतने कम दामों में,
कहीं नहीं पायेंगे !—
मूर्ख शीश धुनता है—
रस को तरसता है—
वाणी से यहाँ सदा अमृत बरसता है !

हरियाली सभी ओर जैसे इतराती है—
गाँवों के तालों में अकसर मुस्काती है—
जीवन है
पानी में गले हुए गत्ते-सा—
शहर
कहाँ पाओगे प्यारा कलकत्ते-सा !
यहाँ
राज समझोगे आसमानवाले का—
अभी कहाँ देखा है
जादू बंगाले का !

—अट्ठानबे—

कभी आंख भरती है,
कभी बांह चढ़ती है—
हौसले हमारे हौसलों से टकराते हैं—
कभी-कभी हृदय
मगर सदा गाल बजते हैं,
बिजली कड़कती है
बादल गरजते हैं—
कदली के वन से जो सीधे चले आते हैं—
जब मन करता है तब टूटकर बरसते हैं,
वरना निकल जाते हैं !!

●

हाँ, सही है,
सांप हैं हम—
आपकी नस-नस कि जिसकी पकड़ में है
वह अनूठी भाँप हैं हम—
और, फिर भी सांप हैं हम !

आपने सदियों-युगों से
हमें जाना,
हमें माना,
बहुत ही पूजा हमारी की—
और,
फिर, सम्मान में ऐसी, यहाँ से वहाँ तक फैली हुई
धरती हमारे शीश पर धर दी
कि हमने उफ़ न की !—
आज अब इसकी गवाही आप ही दें—
क्या कभी कटु-वाक्य भी हमने कहे,
हम सदा चुप ही रहे ?—

आप पूजें,
आप हमसे डरें,
हमसे दूर भागें,
मौत की संज्ञा हमें दें;
और,
फिर तो,
आप अपनी मौत बनकर
स्वयं को
काटें,
डसें,
खुद ही मरें
बोलिये, हम क्या करें !

यह सही है, सांप हैं हम—
आपकी नस-नस
कि
जिसकी पकड़ में है
वह अनूठी भाँप हैं हम—
किन्तु, फिर भी सांप हैं हम !!

●

—एक सौ एक—

••• तुम्हारे लिए

यह बैसाख-जेठ की गरमी, यह तपती दोपहरी,
पेड़ों से कुछ माँग रही है उनकी छाया गहरी !
नद-नदियों का, ताल-तलैयों का जल सूख चला है,
खलिहानों में गेहूँ जैसे रह-रहकर मचला है—

हरो-हरो, तुम किसी तरह मेरा तन-ताप हरो,
मुझे ले चलो खलिहानों से जल्दी ज़रा करो !
इन लू की लपटों से मेरा तन झुलसा जाता है—
फिर, ऐसे में कौन भला इन पेड़ों पर गाता है !!—
यह कोयल तन की काली है, मन की भी काली है—
इसको भाती हरे-आम के पेड़ों की डाली है—
इसे कुंज हैं याद और वीराना याद नहीं है—
किसी दुखी दिल का ज्यों इसको गाना याद नहीं है—
खैर, हमें क्या, जो सुख से हैं सुखी रहें युग-युग तक,
पर, देखो, वह चला आ रहा है नन्हा-सा बालक।
ऐसे में यह निकल पड़ा है, इसे न लू लग जाये !
पर, किसान का बालक गरमी से भी क्या घबराये !
यह तो अपने पुरखों सा पानी कर देगा खून,
खेतों पर खायेगा अपनी मटर-बाजरा भून !
ये खायेगा और गाँव में नई फ़सल बाँटेगा—
अपनी बगिया के पेड़ों को हँस-हँसकर छाँटेगा—

दादा ने जो पेड़ लगाये, जो काका ने सींचे,
खड़ा नहीं हो पाया बालक उन पेड़ों के नीचे !—
आख़िर चूल्हों में घर में लकड़ी भी तो जलती हैं,
कौन जानता हैं, किसकी दुनिया कैसी चलती है !
पर सपने हैं ये, मेरे हित नहीं बने हैं शायद—
इसी ओर बढ़ते आते हैं,
चर जने हैं शायद !
इनसे बात करूँगा, यह
किसान हैं, दिल कोमल है—
मुझे उठाओ, मुझे सहेजो,
आख़िर मुझमें बल है !
ऐसा कुछ न करो जो
ताक़त हवा बने, उड़ जाये—
आने वाली पौध सीर धुने,
हाथ मले, पछताये !
मुझको गर्द-ग़ुबार न समझो,
मैं साँसों की धूल !
मैं गेहूँ की बाल न केवल,
मैं
जीवन का फूल !

मैं जीवन का फूल कि
मैं चंदा-सूरज बन जाऊँ,
मैं ही जाड़ा-गरमी-बरखा
बन धरती पर आऊँ!
माँ-प्रकृति के प्राणों की
नरमी मेरी नरमी है—
मुझको देखो, माथा पोंछो,
ऐसी क्या गरमी है!!